सतनाम आन्दोळन - वर्तमान स्वरूप

प्राचीन भारत नाग- द्रविड़ों का देश रहा है। छत्तीसगढ़ भारत की प्राचीनतम संस्कृति की धरोहर रहा है। सत्य और अहिंसा यहाँ की प्राचीनतम संस्कृति एवं इतिहास रहा है। महान दास 'राजा बली' की याद आज भी दक्षिण भारत में तरो ताजा है। जहाँ एक तरफ आर्यवर्त के लोग बली राजा की धन संपत्ति हड़पकर उसी खुशी में हर वर्ष लक्ष्मी पूजा करता है। वहीं दूसरी तरफ दक्षिण भारत में खासकर केरल में अपने दानी राजा महाबली की याद में ' ओनम पर्व ' मनाया जाता है। तामिलनाडु में फसलों से सम्बन्धित मकरसंक्रान्ति के आस पास पोंगल पर्व मनाया जाता है। इसी देश में आर्यवर्त के लोग बली राजा का वध कर उनके धन सम्पत्ति छीनकर खुशियाँ मनाते है, वहीं नाग- द्रविड़ सभ्यता के लोग अपने राजा की मृत्यु का शोक मनाते है।

महात्मा ज्योतिबा फूले ने लिखा है कि 'बली राजा के काल में सोने की चिड़िया कहलाने वाली यह भारत धन धान्य से परिपूर्ण था। यहाँ का जन जीवन सुखी एवं सम्पन्न था। लोगों के घरों में कहीं ताला नहीं लगाया जाता था। चोरी, डकैती, लूटपाट कहीं सुनने में नहीं आता था। प्रजा की हर तकलीफ को राजा अपना तकलीफ समझता था। पता चलते ही तत्काल स्वयं सहायता में लग जाता था। मानवता समाज का मुख्य धर्म था। समाज को संचालन करने के लि्ए नियम कानून बनाया गया था जिसे 'मानव धर्म सूत्र' कहा जाता था। मेहमानों का आदर सत्कार द्रविड़ सभ्यता की जान थी। मानवता को सर्वोच्च महत्व दिया जाता था। दविड़ मानवता का लाभ उठाकर भारत में घुसपैठ के लिए आर्यो ने दानवता का उपयोग किया।

ईसा से लगभग **1800** वर्ष पूर्व आर्यो का भारत में आगमन हुआ। अंगिरा उनके प्रेरणाश्रोत माने जाते है। डा.अम्बेडकर के अनुसार आर्य शुद्ध मांसाहारी थे। वे कृषि कार्य जानते नहीं थे। मांसाहारी होने के कारण उनका मुख्य धन पशुधन था। अतः पशुधन के विकास के लिए सप्तसिन्धु पार कर भारत आये। भारत की हरित भूमि आर्यो का मन भा गया। द्रविड़ जनता आदतन मानवतावादी दृष्टिकोण के कारण आर्यो कों भारत भूमि में निवास करने की अनुमति दे दी। बाद में यही शरणार्थी यहाँ के हुक्मरान बन गये।

जवाहरलाल नेहरू द्वारा लिखित 'भारत की खोज' में उन्होंने स्पष्ट किया है कि आर्य लोग आदतन नशेबाज, मांसाहरी व दस्यु प्रवृत्ति के थे। सुरापान के साथ चोरी- डकैती उनका धंधा था। यज्ञ के नाम पर निरीह पशुओं की हिंसा उनके स्वभाव में था। वहीं प्राचीन भारत उत्तम कला, विकसित संस्कृति और पशु- पालन के साथ कृषि- प्रधान देश रहा है। आर्यो ने भारत- भूमि में आते ही लूटपाट, चोरी, डकैती शुरू कर दी। तत्कालिन महान दानी 'बली' राजा को जब इस बात का पता चला, कि उनके राज्य में बाहर से आये आर्यो द्वारा चोरी, डकैती की जा रही है, तो उन्होंने शरणार्थी आर्यो को बुला कर उनकी मूल समस्या और चोरी करने के कारण को पूछा। बामन की अगुआई में आर्यो ने अपनी निर्धनता का कारण बताते हुए, राजा से अपनी निर्धनता दूर करने के ऐवज में तीन बात मानने के लिए वचन बद्ध कर लिया। बड़ी चालाकी से बली राजा के राज्य को हड़प कर, उन्हें ही उनके अन्तःपुर में कैद कर लिए जिसकी कल्पना वे आज पाताल लोक के रूप में करते है। बाद में आर्यो ने

राजा बली का बध कर दिया। यहीं से नाग- द्रविड़ संस्कृति का क्षरण होना प्रारम्भ हो गया और भारत भूमि में हिंसक, जुआड़ी और सुरा- संस्कृति प्रवेश कर गई।

आर्यो में सुरा- संस्कृति पहले से था। इसके अलावा मांसाहारी एवं हिंसक प्रवृति को बनाये रखने के लिए उन्होंने यज्ञों का सहारा लिया, जिसका विरोध ळम्बे अन्तराल तक नाग - दविड़ भारतवासियों द्वारा किया जाता रहा। उन महान भारतीय वीरों एवं सुरक्षा सेनानियों को, जिन्होंने विदेशी आर्यो के इस कुसंस्कृति का विरोध किया। अपनी देश की सीमा में प्रवेश पर न केवल रोक लगाया वरन् उनका डटकर मरते दम तक मुकाबला किया। उन महान वीरों को आर्यो ने अपभ्रंस कर राक्षस, निशिचर आदि शब्दों से सम्बोधित किया। उनका विकृत रूप पेश किया। इस तरह उन्होंने मूलनिवासियों को गुमराह किया। आर्यो के प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद में इसका वर्णन मिलता है। आर्यो ने बाद में नाग- द्रविड़ों का इतिहास नष्ट कर दिया। सुरा- संस्कृति के विरोध करने वालों को असुर कह कर अपने सारे दुर्गुण सभ्य नाग- द्रविड़ों पर मढ़ दिया, जिसका वर्णन हम पहले कर आये हैं।

सुरा -संस्कृति मनुष्य को लौकिक जगत अर्थात व्यवहारिक दुनिया से कोसों दूर ले जाता है। मनुष्य नशे के हालत में वेहोश हो लौकिक जगत से हट कर, काल्पनिक जगत में खोया रहता है। सुरा- संस्कृति के कारण तामसी गुण प्रभावी रहता है और मनुष्य क्रोधी प्रवृत्ति का हो जाता है। जहॉ आर्य सुरापान और मांसाहारी होने के कारण तामसी प्रवृत्ति के थे, वहीं नाग- द्रविड़ लोग सात्विक प्रवृत्ति के थे। तामसी प्रवृत्ति के कारण बात बात पर लोगों को धमकी देना या श्राप देना उनका स्वभाव में था। जब जन मानस में ज्ञान का संचार हुआ, तब उनके श्राप का भय भी अपने आप समाप्त हो गया। जनता उनके बड़वोळापन को अच्छी तरह समझ गई। तब आर्यो ने समझौता का रास्ता अपनाया। एक समय छत्तीसगढ़ में ब्राह्मणों को मारना पाप समझा जाता था, जनता में उनके श्राप का भय छाया हुआ था। लेकिन ब्राह्मण किसी को भी मारने में नहीं चूकता था। क्षेत्र में उनका आतंक छाया हुआ था। खासकर मराठा ब्राह्मणों का राज्य छत्तीसगढ़ में आतंक का पर्याय वन गया था। अतः जब सतनाम आन्दोलन आगे बढ़ा तो जनता को उनका ढकोसला समझ में आया। फिर तो स्थिति ही बदल गयी और एक कहावत चरितार्थ हो गयी “अपन जी में लागिस घात, त ब्राह्मण मारे नइये पाप।”

समयोपरान्त सुरा- संस्कृति ही याज्ञिक - कर्मकाण्डों में परिवर्तित हो वैदिक- संस्कृति कहलायी। यही शंकराचार्य काल और खास कर मुगलों के प्रवेश के बाद हिन्दू –संस्कृति कहलाने लगी, जिसकी चर्चा हम पीछे कर आये हैं। आर्यो ने अपने बड़बोलेपन तथा कुसंस्कृति को पवित्र बताने के लिए तरह तरह की कहानी गढ़ी, ताकि आम जनता में उनके श्राप का भय बना रहे। समाज को अज्ञानी बनाये रखा ताकि कोई उनका विरोध न करे और वे भूसूर बने सत्ता का उपभोग करते रहें। वास्तव में देखा जाय तो आर्य संस्कृति का असली रूप हिंसा एवं व्यभिचार का प्रदर्शन है, जैसे दशहरा में रावण बध, दीवली में जुआ खेलना, होली में भांग, शराब आदि का खुलकर सेवन करना, यज्ञ के नाम पर बली या हत्या एवं व्यभिचार, अवतारी पुरूष बताकर आर्यपुत्रों का जन्मदिन मनाना इत्यादि, जिसके नाम पर वैदिक संस्कृति आज भी जिन्दा है। समयानुसार इनकी परिभाषा भी बदल रही है। अशिक्षा के कारण मूलनिवासी उनके कुटिल चाल को समझ नहीं पा रहे है और उन्हीं के धार में बहते चले जा रहे हैं।

डा. अम्बेडकर द्वारा लिखित एवं भारत सरकार द्वारा प्रकाशित सम्पूर्ण वाड्मय के अनुसार वैदिक ग्रन्थों की विभिन्न पहेलियों को स्पष्ट करते हुए उन्होंने लिखा है कि 'यज्ञ के नाम पर निरीह पशुओं की बली, जुआ, सुरापान, व्यभिचार आदि का वर्णन आर्य गन्थों में भरा पड़ा है। नरमेध यज्ञ, पशुमेध यज्ञ, अश्वमेध यज्ञ किस प्रकार आर्यो द्वारा किये जाते थे। आज यह पढ़कर आत्मग्लानि होती है कि भारत में ऐसी भी किसी सभ्यता एवं संस्कृति का विकास हुआ था, जहॉ हत्या, नशाखोरी, व्यभिचार, जुआ आदि यज्ञ के नाम पर पुण्य कार्य माने जाते रहे हैं।'

डा. अम्बेडकर के सम्पूर्ण वाड्मय भाग सात (पृष्ट **20 - 21**) के अनुसार आर्यो में देवता एक ऐसा वर्ग होता था, जो आर्य कन्याओं के साथ प्रजनन अथवा वंश सवर्धन करता था। अच्छी सन्तानोत्पति के उद्देश्य से आर्य लोग देव वर्ग के किसी भी पुरूष के साथ अपनी स्त्रियों को सम्भोग करने की अनुमति देते थे। यह प्रथा इतने व्यापक रूप में प्रचलित थी कि देवता लोग आर्य स्त्रियों के साथ पूर्वास्वादन को अपना आदेशात्मक अधिकार समझने लगे। किसी भी आर्य स्त्री का उस समय तक विवाह नहीं हो सकता, जब तक कि वह देवों के पूर्वास्वादन के अधिकार तथा उनके नियंत्रण से पूर्णतः मुक्त नहीं हो जाती। तकनीकी भाषा में इसे अनुदान कहते है। 'लाज होम' अनुष्ठान प्रत्येक हिन्दु समाज में किया जाता है, जिसका विवरण आश्वालयन गृह्य सूत्र में मिलता है। इस सूत्र के अनुसार किसी भी आर्य कन्याओं को शादी से पहले देवताओं द्वारा पूर्वास्वादन करने का पूर्ण अधिकार होता है। 'लाज होम' में 'अवदान' एक ऐसा अनुष्ठान है, जो देवों के वधु (कन्या) के ऊपर अधिकार के समापन की कीमत तय करता है। सप्तपदी सभी हिन्दू विवाहों में सबसे अनिवार्य धर्मानुष्ठान है, जिसके बिना हिन्दू विवाह को मान्यता नहीं मिलती। सप्तपदी का अर्थ, वर का बधु के साथ सात कदम चलना या सात फेरे लगाना होता है। ऐसा क्यों किया जाता है, इस पर डा. अम्बेडकर ने बताया है, कि यदि देव क्षतिपूर्ति से असन्तुष्ट है, तो वे सातवे कदम या सात फेरा से पहले तक अपना अधिकार जता सकते हैं। सातवां फेरा के बाद बधू पर देवताओं का अधिकार समाप्त हो जाता है और वर- वधू, पति- पत्नि की तरह स्वच्छन्द रह सकते है। इस तरह तत्कालिन आर्य समुदाय व्यवहारिक घृणित एवं सामाजिक व्यभिचार में फंसा हुआ था।

छत्तीसगढ़ भारत की प्राचीनतम संस्कृति का धनी ः

प्राचीन भारत में नाग- द्रविड़ सभ्यता अति विकसित अवस्था में थी। स्त्री- पुरूषों के परिवारिक सम्बन्धों में पवित्रता एवं परिपक्वता आने लगी था। कला और वाणिज्य अपने चरम विकास पर थी। कृषि कार्य में लोग बड़े पैमाने पर लगे हुए थे। धन धान्य की कोई कमी नहीं थी। मुख्यतः सारे उत्सव कला एवं कृषि कार्य तथा उससे संबंधित पैदावार पर आधारित होता था। दक्षिण एवं मध्य भारत के साथ छत्तीसगढ़ वास्तव में नाग- द्रविड़ों की प्राचीनतम संस्कृति का धनी रहा है। जैसे हरियाळी, भोजली, सुआ, तीजा, नागपंचमी, पोला, नवा खाने की प्रथा, करमा, जेठौनी, राउतनाचा, छेरछेरा, शैला या डंडा नाच आदि यहॉ के मुख्य त्यौहार है। इन त्यौहारों को कोई भी आर्य समुदाय नहीं मानता। इन त्यौहारों का सम्बन्ध अधिकतर खेती के अलावा पशु- पक्षी, पेड़ - पौधे ही रहा है। इनमें कहीं किसी मूर्ति पूजा का लेप नजर नहीं आता। इस तरह देखा जाय तो छत्तीसगढ़ की कला एवं

संस्कृति कृषि एवं कर्म प्रधानता के साथ प्रकृति प्रेम का द्योतक रहा है। दीपावली, दशहरा, होली, रामनवमी ये सब आर्य जगत की भाग्यवाद पर आधारित सुरा- संस्कृति का देन है।

हरियाली त्यौहार जिसमें हल की साफ सफाई के साथ पूजा किया जाता है जो कृषि कार्य के लिए एकमात्र सर्वोत्तम औजार माना जाता है। वहीं भोजली त्यौहार फसल के उपजाऊपन के जांच करने का उत्तम तरीका रहा है, जिसमें प्रत्येक घर में अनाज के कुछ दानों को अलग से लगाया जाता है और आठ दिन बाद सारे गांव के लोग इकट्ठे होकर अपने भोजली का प्रदर्शन करते है। इस अवसर पर भोजली गीत गाये जाते है जैसे 'माड़ी भर जोंधरी पोरिस कुसियार, जल्दी- जल्दी बाढ़ो भोजली होइहा होसियार।'

नाग पंचमी वास्तव में पांच नाग राजाओं के याद में मनाया जाता रहा है जिन्होंने भारत में उत्तम समाज व्यवस्था स्थापित किया था। शिव जी भारत भूमि के एक क्षत्र नाग वंशी राजा थे और वे आर्यो के सुरा- संस्कृति व यज्ञ के घोर विरोधी थे। उन्होंने दक्ष प्रजापति के हिंसक यज्ञ को तहस नहस कर दिया था। नन्द और मौर्य वंश इन्ही नाग राजा के वंशज रहे है। आर्यो ने इन नाग राजाओं को सांप बताकर जानवर की श्रेणी में डाल दिया। महान राजा शिशुनाग को शेषनाग बताकर उसके साये में विष्णु को सुला दिया। आज अपभ्रन्स स्वरूप नागपंचमी के दिन नाग देवता (सर्प) को दूध पिलाते है (जबकि सांप को दूध पिलाने से वह मर जाता है)। वास्तव में दूध पिलाना अपने पूर्वज नाग वंश के प्रति श्रद्धा व्यक्त करना है। आर्य समुदाय नाग पंचमी पर्व को नहीं मानता।

पोला छत्तीसगढ़ के अलावा दक्षिण भारत में महत्वपूर्ण त्यौहार माना जाता है। इसमें अपने पशुओं को जिनका खेती एवं अन्य कार्य में उपयोग किया जाता है, उनकी क्षमता का प्रदर्शन होता है। गांव - गांव में बैलों अथवा भैसों की जोड़ी, या अन्य पालतू जानवरों को सजा कर सामूहिक प्रदर्शन किया जाता है। पोला के अवसर पर बस्तर का मूर्गा लड़ाई आज भी प्राचीन संस्कृति का उत्तम उदाहरण है। करमा में कलमी पेड़ की डाल की पूजा की जाती है। यह पेड़ - पौधों के प्रति प्यार का प्रतीक माना जाता है।

इसी समय 'गौरा' मनाने की प्रथा भी छत्तीसगढ़ में काफी प्रचलित है। यह पर्व भोला शिव शंकर के साथ गौरी एवं खटबदन के याद में मनाया जाता है। रात भर नाच गान चलता है जिसमें भोलाभाला शिव एवं नाग कन्या गौरी की बिदाई में इस तरह का गुणगान किया जाता है। 'कोरा के बालक ला गौरी मोला देके जावे ना, जुग वो जुग ले लिहव तोरे नाम हो।' इसमें गौरी नाग कन्या बताया गया है जबकि पार्वती आर्य राजा हिमालय की पुत्री है। पार्वती, नाग कन्या गौरी से भिन्न है। शिव को अपने वश में करने के लिए आर्य राजा हिमालय अपनी सुन्दर कन्या पार्वती को भेंट किया था। इससे पहले दक्ष ने अपनी बेटी को भेजा था लेकिन शिव उनके चाल को समझ कर यज्ञ की अनुमति नहीं दी और तहस नहस कर दिया। बाद में हिमालय ने अपनी बेटी पार्वती को शिव शंकर के पास भेज कर वश में किया था और देवता की श्रेणी में लाकर महादेव बना दिया। शैव और शाक्तों का मतभेद इस बात का प्रतीक है। कोयापुनेम और गोंडीं धर्म में भी उल्लेख मिलता है कि गौरी ही शिव

की असली अर्धांगिनी थी। प्रत्येक पूजा अर्चना में गौरी का प्रतीक चिन्ह गोबर के रूप में हमेशा रखी जाती है, तभी पूजा सम्पन्न मानी जाती है।

छत्तीसगढ़ में नवा- खाने की एक महत्वपूर्ण परंपरा है। यह पर्व नये फसल के स्वागत में मनाया जाता है। फसल तैयार होकर जब धान की बालियॉ पकने को होता है तो कुऑर या अश्विन के शुक्ल पक्ष मे दसहरा से एक दिन पहले नवमी को यह पर्व मनाया जाता है। प्राचीन काल से यह पर्व मनाया जा रहा है। कृषि प्रधान द्रविड़ सभ्यता की निशानी है। छत्तीसगढ़ में यथावत बरकरार है। अगले दिन दसहरा मनाया जाता है। इसमें मिट्टी का लगभग **21**फूट ऊँचा गोलाकार स्तंभ बनाया जाता है। इसका जमीनी हिस्सा काफी मोटा होता है और ऊपरी भाग पिरामिड की तरह छोटा होता जाता है। इस स्तंभ को गढ़ कहते है। शाम के समय आस पास गांव के लोग जमा होकर उस गढ़ को फतह करने का कार्य क्रम रखते हैं। जो व्यक्ति उस गढ़ में चढ़ जायेगा वह विजेता माना जाता है। विजेता को अच्छा खासा इनाम मिलता है। इसी गढ़ प्रथा के कारण यह क्षेत्र छत्तीसगढ़ के नाम से जाना जाता है। अब आर्यो के सम्पर्क में आकर कुछ लोग इसी दिन रावण का दस सिरवाला पुतला जलाते है। आचार्य चतुरसेन द्वारा लिखित 'वयं रक्षामः' नामक पुस्तक में बताया है कि रावण पुलत्स्य ब्राह्मण का वंशज था जो रक्ष संस्कृति का पुरोधा एवं महाज्ञानी था। वह वैदिक आर्यो के हिंसक यज्ञों का विरोध करता था।

जेठौनी त्यौहार कार्तिक शुक्ल पक्ष एकादशी को मनाया जाता है। इस समय तक लगभग फसल कट कर खलिहान में जमा हो जाती है। इस दिन घर के समस्त पालतू पशु खासकर गाय, बैल एवं भैंसों को जो खेती व अन्य कार्य में उपयोग होते हैं। उन सब जानवरों को घर में फसल आने के खुशी में अन्न के साथ पकवान खिलाते हैं। इसी दिन चरवाहा अर्थात राउत, यादव लोग घर घर जाकर गाय के गले में सुरही (रस्सी) बांधते हैं। नई फसल की खुशी में राउत नाचा भी इस दिन से प्रारम्भ होता है जो लगभग एक माह तक चलता है। इस पर्व के अवसर पर राउत लोग कृषि कार्य और प्रकृति से संबंधित दोहे बनाकर गीत गाते है तथा एक लय और धुन के साथ लाठी भांजते हुए नाचते है।

फसल की मिसाई के बाद जब अनाज खलिहान से घर में इकट्ठा हो जाता है, तब छेरछेरा त्यौहार मनाया जाता है। इस दिन गांव का हर अमीर- गरीब, घर- घर जाकर भिक्षा मांगते है। पूरे गांव के लोग मिल -जुल कर इस पर्व को मनाते है, जो समता, एकता एवं भाईचारा के प्रतीक के रूप में मनाया जाता है।। माघ के महीने से डंडा या शैला नृत्य शुरू हो जाता है, जो लगभग डेढ़ माह तक चलता है। कहीं कहीं नेवरात भी मनाया जाता है जिसमे गांव के बैगा का महत्वपूर्ण योगदान रहता है। ये ही छत्तीसगढ़ के मुख्य पर्व माने जाते है, जिन्हें कोई भी आर्यपुत्र नहीं मानते। इस तरह पशु -पक्षी एवं पेड़ - पौधों की रक्षा करना, वन उपज के साथ अपनी जीवन शैली को जोड़ना, छत्तीसगढ़ की मूल संस्कृति रही है। रामनवमी, दीपावली, दशहरा, होली यह सब आर्यो के सम्पर्क में आने के कारण आज लोग मनाने लगे हैं, लेकिन छत्तीसगढ़ का मूल पर्व अभी भी कृषि एवं लोक कला पर ही आधारित है।

गुरू घांसीदास ने छत्तीसगढ़ की मूल- संस्कृति एवं परंपरा को जीवित रखने की कोशिस की थी। फलस्वरूप क्षेत्र के लगभग सभी समुदाय के लोगों ने उनके सतनाम आन्दोलन में बढ़ चढ़ कर

हिस्सा लिया और अन्ततः जाति विहीन सतनाम पन्थ में विलीन हो गये। उनका सतनाम आन्दोलन इस दिशा में नवीनतम दृष्टिगोचर होता है। भारत में जहॉ कहीं भी सतनाम आन्दोलन हुआ है, वह आर्य- संस्कृति को नष्ट कर, नाग- द्रविड़ों की प्राचीन भारतीय संस्कृति को पुनर्जीवित करने का एक अचूक प्रयास रहा है। आर्य -संस्कृति गैरबराबरी पर आधारित थी। अतः घांसीदास जी ने मानवता पर आधारित, जाति विहीन समतामूलक व्यवहारिक जीवन को ज्यादा महत्व दिया। इसीलिए उनके सन्देशों में असमानता के विरूद्ध लोक मानस का सर्जनात्मक विद्रोह व्यक्त होता है। साथ ही आम आदमी के जीवन की समग्रता को प्रभावित करने वाला सत्नाम सार चेतन- तत्व स्पष्ट नजर आता है जो मानवीय अपूर्णताओं को दूर करने में अत्यंत सहायक सिद्ध होता है।

<u>सतनाम ही जीवन का सार</u> ः

सतनाम चेतना के कारण हमारे शरीर का विभिन्न अवयव या अंग क्रियाशील रहता है। इस चेतना के असन्तुलन के कारण व्यक्ति का व्यवहार बदल जाता है। विवेकहीन व्यक्ति ताकतवर होकर भी, ज्ञानवान व्यक्ति का गुलाम बन जाता है। अज्ञानतावश तथाकथित ब्राह्मणवादी विचारधारा से प्रभावित हो पूर्वजन्म का कर्मफल अथवा ईश्वर का अभिशाप समझ कर, अपने ऊपर हो रहे अन्याय- अत्याचार का प्रतिकार करने के बजाय चुपचाप बर्दाश्त करता रहता है। यही अज्ञानता और अनजानापन पुरोहितवाद का ब्रह्मास्त्र है। जातिवाद समाज को विभाजित रखने तथा स्थायी शोषण का दूसरा ब्रह्मास्त्र रहा है। गुरू घांसीदास ने समाज में सतनाम- चेतना जागृत कर, पुरोहितों के इसी ब्रह्मास्त्र को भोथरा एवं असरहीन किया क्योंकि जातिवाद के समाप्त होने पर ही सतनाम- आन्दोलन की शुरूआत होती है। सतनाम आन्दोलन अपने युवाकाल में खासकर गुरू बालकदास के नेतृत्व में, सुरा- संस्कृति और जातिवाद को जड़ से नष्ट करने का (सिख पन्थ की तरह) अचूक अस्त्र साबित हुआ है। तब विभिन्न समुदाय के लोगों ने बड़ी संख्या में अपनी जाति नष्ट करके सतनाम पन्थ में शामिल हुए है। गुरू बालकदास का नेतृत्व सतनाम आन्दोलन के लिए काफी असरदार साबित हुआ।

<u>अहिंसा एकमात्र विश्व शान्ति का सन्देश ः</u>

गुरू घांसीदास नाग- द्रविड़ों की भॉति सत्य और अहिंसा के पूजारी थे। वे किसी चेतन- प्राणी की हत्या को चेतना की हत्या समझते थे। अतः चेतना का अहिंसा के साथ गहरा सम्बन्ध है। हिंसा का अर्थ चेतन- जगत को नष्ट करना जो अशान्ति पथ है। विश्व शान्ति के लिए सत्य एवं अहिंसा का मार्ग ही उत्तम माना गया है और यही सतनाम आन्दोलन है। वे वैदिक परंपरा के सक्त विरोधी थे। उन्होंने यज्ञ के नाम पर निरीह पशुओं की बली को अमानुषिक बताया। समाज में सात्विक मार्ग को प्रोत्साहित किया, जो उनके सतनाम- आन्दोलन का अहम् कार्य रहा है।

मानव शरीर में दो प्रकार की ऊर्जा होती है। पहला ः बाह्य ऊर्जा और दूसरा ः आन्तरिक ऊर्जा। बाह्य ऊर्जा शरीर में कार्बोहाइड्रेट्स के रूप में संकलित हुई होती है। यह बाह्य स्त्रोतों से जैसे

सूर्य, वायु, जल, भोजन आदि खान -पान की वस्तुओं से प्राप्त होती है। सात्विक भोजन से पाचन किया ठीक रहती है। कफ, बात और पीत्त अर्थात सत् -रज -तम ये तीनों गुण खान- पान से प्रभावित होता है। लेकिन आन्तरिक ऊर्जा, मन के ऊपर सतनाम चेतना से प्राप्त होती है। यह न केवल बाह्य जगत या इन्द्रियों का संचालन करती है वरना सुसुप्त चेतना को जागृत भी करती है। बाह्य ऊर्जा भी हमारी आन्तरिक चेतना को जागृत करने में सहायता करती है और समय समय पर उसे प्रभावित भी करती है। आन्तरिक शुद्धता से मन में पवित्रता उत्पन्न होती है जो बाह्य ऊर्जा से प्रभावित होती है। अतः खान पान की शुद्धता पर गुरू ने जोर दिया ताकि मनस्तत्व के विकास में किसी तरह का अवरोध न हो। अहिंसा सतनाम पन्थ का मूल- मन्त्र है और सत्य को प्राप्त करने के लिए हिंसा का परित्याग आवश्यक है। हिन्सा से किसी का दिल नहीं जीता जा सकता, केवल मन में अशान्ति पैदा करती है। अहिंसा मन में प्रेमभाव, शीतलता एवं शान्ति पैदा करती है। यही विश्व शंति का एक मात्र उपाय है। पन्थी गीत के माध्यम से उनके सन्देश को जन मानस आज याद करती है।

गुरू घांसीदास बाबा लाये सत के भोरना
उगिस गियान सूरज हो, मिल के अंजोरना
कहे घांसीदास झन लेहु जीव के परान ला
होथे एही मा सत के निवास मूरख जान ला
आकाश म पंख पखेरू जीव ला, खुला छोड़ना
जीव के मारे ला सुख नई मिलय ललना।
चोर अपन हृदय मा रही रही आही ललना
अपन मन ला खून के तरिया म झन बोरना
फल- फूल, घांस- पात गावत हे सन्त के गाना ला
पांव ले कुचर झन पहिने वो सन्त के गाना ला,
पांव ले कुचर झन पहिने वो सन्त के बाना ला
मने मन कहे झन इतरा, टूट जाही ये पातर डोरना।

<u>सामाजिक एकता - समाज का मूल मन्त्रः</u>

गुरू घांसीदास ने सामाजिक एकता को सामाजिक शक्ति का मूल मन्त्र बताते हुए स्पष्ट किया कि संगठन शक्ति के आधार पर बड़े से बड़े दुश्मन से मुकाबला किया जा सकता है। जब तक समाज बिखरा एवं विभाजित रहेगा तब तक ताकतहीन व गुलाम बना रहेगा। साम, दाम, दण्ड और भेद ये चारों दुश्मन के मुख्य अस्त्र है। समाज को विभाजित करने के लिए इसका उपयोग होते रहता है। गुरू घांसीदास एवं बालकदास जी ने अपने समय में दुश्मन के इस अश्त्र को असरहीन करने का पयास किया। संगठित समाज के लिए यह आवश्यक है कि दुश्मन के हर अस्त्र को भोथरा एवं असरहीन करे। षह काम लड़ाई -झगड़ा से नहीं अपितु आपसी प्रेमभाव से संभव है। उनका सन्देश आज भी जन- जन के मन में इस प्रकार बसा हुआ है।

गुरू के गियान ला धर लेवे हंसा, तैहर धर लेवे हो
कहिथे गुरू घांसीदास जम्मो झन रहो एके संग में

मिटा जाही लड़े- भिड़े मा ऐ मानुष तोर वंशा
सबुत बर कहत हावौं एक ठन कहानी।
रहिन जंगल मा एक संग सात बहिनी मैना,
सातों मिल के रहैं एके संग रात दिन संझा अऊ बिहना,
एक दिन लड़े लागिन दाना खातिर एक ठन चना के,
छोटकिन हा दाना ला धरिस अपन चोंच मा लुकाके,
उड़ा गइस अकेला खाहूँ करके अइसन मंसा,
ओइ समय एक बहेलिया हा जंगल मा घूमत रहिस,
मैना ला अकेला देख के ओकर मन लोभागे,
फेकिस ऐसन जाल मैना फंस के फड़फड़ागे,
पछतावत रोवत रहिस अपन दशा ला सोच सोच के,
काबर मैं छोड़े अपन संगी साथी ला सोच सोच के,
अइसन हे गियान हंसा गुरू के, करले पहचान सतनाम के।

<u>संगठन का स्वरूप ः</u>

आज सतनामी समुदाय में पंजीकृत व अपंजीकृत संगठनों की बाढ़ सी आ गई है। लेकिन वे सभी संगठन समाज को एक मंच पर लाने में अपना लाचारी दिखाते है। यह समझन जरूरी है कि "**एक उद्देश्य** को प्राप्त करने के लिए, **एक विचारधारा** वाले लोगों को, **एक से ज्यादा संगठन** नहीं बनाना चाहिए, अन्यथा वे **एक दूसरे का टांग खीचते** वहीं के वहीं रह जायेंगे। बिखरे मोती के दाने की तरह ताकतहीन हो मंजिल के करीब कभी नहीं पहुँच सकते। ठीक उसी प्रकार **एक उद्देश्य** को प्राप्त करने के लिए **विभिन्न विचारधारा** वाले लोगों को **एक संगठन** नहीं बनाना चाहिए। अन्यथा मंजिल तक पहुँचने के बजाय, आपस में **विचारधारा के टकराव** के कारण **एक दूसरे का टांग खींचते** हुए, वहीं के वहीं रह जायेंगे।" इस प्रगतिशील युग में सतनाम आन्दोलन से जुड़े उन तमाम जन समुदाय को अपने पूर्वाग्रह से हट कर, एक मंच, एक गुरू, एक नेतृत्व, एक पन्थ, एक रीति- रीवाज और एक पहचान को स्वीकार कर समाज को सुदृढ़ करना अति आवश्यक है। अतः अब वक्त आ गया है कि बुद्धिजीवी वर्ग को अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए कमर कस कर आगे चले। तभी समाज का भविष्य सुधर सकता है। अन्यथा समाज पुनः उसी पुराने स्तर की ओर तेजी से अग्रसित हो रहा है जहॉ से गुरूओं ने समाज को ऊपर उठाने का प्रयास किया था।

<u>आज हम कहॉ हैं ः</u>

पाहन पूजा से परहेज क्यों ः

सतनाम- पन्थ की मूल अवधारणा महामनव बुद्ध, सन्त कबीर एवं गुरूनानक की तरह निराकार रहा है। उनकी धारणा में सतनाम का स्वरूप कैसा होना चाहिए था।

"नाम ठाम न जाति जाकर रूप रंग न रेख।

आदि पुरख उदार मूरति अजोनि आदि असेख।।
देस और न भेस जाकर रूप रेख न राग।
जत्र तत्र दिसा विसा होइ फैलिओ अनुराग।।" (गुरू ग्रन्थ साहेब नितनेम 80)

गुरू घांसीदास जी ने अपने दिव्य सन्देश में मूर्तिपूजा का निषेध किया है। उन्होंने कहा है कि-

"ईश्वर के नाम पर पान, परसाद, नरियर, सुपारी चढ़ावन हर ढोंग आय।"

गुरू घांसीदास ने कई जगह इस बात को दोहराया है। कि 'सतनाम घट घट में बसा है उसे जागृत करना है न कि बेजान पत्थर पर अपना सिर फोड़ना है। जिस पत्थर में खुद जान नहीं है वह तुममें क्या जान भर सकेगा। मूर्ति पूजा ब्राह्मणों का एक भ्रमजाल है अतः रूढ़ीवादी- कर्मकाण्ड को मान लेना मात्र ही सतनाम की अवहेलना है।'

उनके सत्य सन्देश को पन्थी गीत के माध्यम से लोग नाच -नाच कर गाते हैं

"मन्दिरवा मा का करे जाइबो, अपन घट ही के देव ला मनाइबो, पथरा के देवता हालय नइ तो डोलय हो हालय नइ तो डोलय, सूंघे नई ता जानै ओहर बोले नई तो जानै, ओमा का धूप अगरबत्ती चढ़ाइबो। ..."

हम पीछे चर्चा कर आये हैं कि आर्यो ने भारत भूमि पर कब्जा करने के बाद यहॉ के मूलनिवासियों शिक्षा के साथ समस्त मानवीय अधिकारों से वंचित कर उनके इतिहास को मिटा दिया। शोषक वर्ग अपनी प्रभुसत्ता बनाये रखने के लिए खुद को सर्वोच्च्य घोषित कर दिया। लेकिन कुछ काल बाद ही मूलनिवासी संगठित हो उन्हें अनेकों बार पदच्युत करते रहे। उन्होने अपने जन्म के आधार पर स्वयं को ईश्वर की सन्तान अर्थात धरती के स्वयंभू घोषित किये। लेकिन वह भी समयोपरान्त नकारा साबित हुआ। जब शोषक वर्ग द्वारा साधारण तरीके से समाज का शोषण करना सम्भव नहीं हुआ। तब भाग्य- भगवान और आत्मा- परमात्मा उनके मन की दूसरी उपज रहा है। पुरोहितों ने अपने जिम्मेदारी से बचने के लिए काल्पनिक वाह्य- शक्ति आत्मा का सहारा लिया। बाद में प्राण- प्रतिष्ठा के नाम अज्ञात आत्मा को पत्थर में घुसा दिया। पुरोहित ने मन्त्र फूंका और घोषित हो गया कि पत्थर जीवित हो उठा। उसे सर्वशक्तिमान घोषित कर दिया। इस तरह मेहनतकश वर्ग के शोषण का उमदा तरीका तैयार हो गया। 'अगर बात बन गई तो भगवान का देन वरना तुम्हारा भाग्य खराब है।' अज्ञानतावश समाज उनकी चतुराई को समझ नहीं पाया। यदि प्राण- प्रतिष्ठा करने से पत्थर में जान आ सकती है तो पुरोहित वर्ग अपने मरे हुए पिता के शरीर को आग में डालने के बदले, प्राण प्रतिष्ठा करके उसे जिन्दा क्यों नहीं कर लेते।

वास्तव में जड़ और चेतन प्रत्येक जीवित प्राणी के लिए अनिवार्य है। जिसमे जड़ परिवर्तनशील है और चेतना द्वारा संचालित होती है। चेतना के कारण ही जड़ तत्व विकसित होता है। जब प्राणी मात्र से चेतना समाप्त हो जाती है तो जड़ अपने मूल भौतिक रूप में पुनः परिवर्तित हो जाता है। पत्थर एक जड़ तत्व है, जिसमें विभिन्न प्रकार के अवयव अणु, परमाणु जो न्युट्रान, इलेक्ट्रान, प्रोट्रान के रूप में मौजूद होते है। उसमें ऊर्जा तो होती है लेकिन चेतना के अभाव में स्वचलित नहीं होता है। प्राणी

जगत के संचालन के लिए जड़ के साथ चेतन का होना अनिवार्य है। चेतना के कारण ही जड़ तत्व संचालित हो कियाशील रहता है।

जड़ अपने आप में कियाशील नहीं होता। जिस तरह दीपक में तेल और बाती सब कुछ होने के बावजूद वह अपने आप जल नहीं सकता।उसे प्रज्वलित करने के लिए बाहरी ऊर्जा, माचिस की तिल्ली या लाइटर की आवश्यकता होती है। ऊर्जा घर्षण से पैदा होती है। दो सूखी लकड़ी को आपस में रगड़ने ने घर्षण द्वारा आग उत्पन्न होती है। अतः गुरू ने जड़ तत्व को केवल उपयोग की वस्तु बताया। उसे पूजा या प्रार्थना करने से न तो मन को कोई शांति मिलेगी और न ही इन्द्रियों में कोई ऊर्जा संचार होगा। उल्टा मन भ्रमित हो अपना असली काम को छोड़कर गलत दिशा में भटक जायेगा। भटकनों के बीच सहारा या अस्थाई आधार की तलाश में मन घूमता फिरेगा जिससे हानि के सिवाय कुछ हासिल नहीं होगा। यह अटूट सत्य है कि बिना मेहनत के दुनिया में कुछ भी हासिल नहीं होता और जो भी हासिल होता है, वह उसके मेहनत का परिणाम होता है। जिस तरह का मेहनत होगा परिणाम भी उसी के अनुरूप होगा। मृगतृष्णा के पीछे भागने से कुछ हासिल होने वाला नहीं।

यह सोचने का विषय है कि जिस मूर्ति का निर्माण मनुष्य के द्वारा हुआ है फिर वही पत्थर का मूरत, मनुष्य का रचयिता कैसे हो सकता है। वह व्यक्ति जो उस काल्पनिक मूर्ति का रचयिता एवं कर्ता है। वही मूर्ति उस रचयिता का रक्षक कैसे बन सकता है। यह केवल मन का फेर है। पत्थर अचल एवं जड़वत है वह न तो देख सकता है और न ही बोल सकता है। न खा सकता है न सूंघ सकता है अर्थात कोई भी मानवीय किया नहीं कर सकता। वह भला तुम्हारा क्या कल्याण कर सकेगा। यदि पूजा करना है तो जीवित प्राणी का करो जो संकट के समय जरूरत पड़ने पर तुम्हारी मदद एवं रक्षा भी कर सकेगा। सेवा ही करनी है तो अपने माता पिता की सेवा करो जो तुम्हे शुभेच्छा देगा। गणेश जी ने अपने माता पिता को ही ईश्वर माना इसीलिए उन्हें गणों में ईश, जनमानस प्रमुख गणेश कहा जाता है।

आज से पांच सौ साल पहले सन्त कबीर ने बहुत ही स्पष्ट शब्दों में कहा है कि

"नींव बिहुँणा देहुरा देह बिहुँणा देव।
कबीर तहॉ न बिलम्बिया करै अलख की सेव।।

'आधरहीन- शरीर और शरीरहीन- देवता किसी मतलब का नहीं'। जिस दीवाल का नींव (या आधार) नही होता वह जमीन पर खड़ा ही नहीं हो सकता। अतः ऐसे देवताओं की कल्पना जिसका शरीर ही नहीं है भयानक भूल है और जो लोग जानबूझ कर ऐसे चक्करों में पड़ते है वे सचमुच निरा मूर्ख है। ऐसे लोगों के बीच समय गंवाना व्यर्थ है। आगे उन्होंने अन्धविश्वास और रूढ़ीवाद की धज्जियॉ उड़ाते हुए कहा कि

पाहन कूं का पूजिये जे जनम न देई जवाब।
अन्धा नर आशामुखी यों ही खावै आब।।
पाहन पूजिय हरि मिलै तो मैं पूजूॅ पहाड़।
इससे तो चाकि भली पीस खाय संसार।।
मूड़ मूड़ाये हरि मिलै तो मैं लेऊॅ मूड़ाय।

बार बार के मूड़ते भेड़ न बैकुन्ठ जाय।।

सन्त कबीर की तरह, गुरू घांसीदास ने स्पष्ट शब्दों में कहा है। 'पथरा के देवता हाले नई डोले'। उन्होंने मनुष्य के अन्तर्निहित चेतना को जागृत करने में ज्यादा महत्व दिया और पत्थर के पीछे भागने को स्पष्ट मना किया है। उन्होंने साफ शब्दों में कहा है कि 'घट घट में बसा सतनाम'। सतनाम- चेतना प्रत्येक प्राणी के घट- घट, हर सांस में बसा हुआ है। यदि अपने जीवन को सफल बनाना है, तो अपना आचरण- व्यवहार एवं स्वभाव को मानवता के अनुरूप बनाओ। यही गुरू की सच्ची पूजा और सतनाम का मूल- मन्त्र है। आस्था रखनी ही है तो अपने कार्य पर रखो जो तुम्हें फल देगा। अस्तित्वहीन चीजों पर आस्था रखने से, सिवाय भटकन के कुछ भी नहीं हासिल होगा ।

सत्त् बसे हावय तोरे तन मन में , कावर खोजत हावस हंसा तै बन बन में
बिरथा एती ओती मन ला लगाए, तोर जिनगी सहारा सतनाम हो
ईश्वर कहॉ खोजन जाबे, असल ईश्वर तोर श्वांस हो,
मन्दिर तोर काया भीतर, जहॉ जीवरा करे निवास हो।
सुन्दर काया हावै तोर, ये मन्दिर के कचरा ला टार दे
ज्ञान के दिया ला जला के मन मन्दिर मा बार दे
यही असली पूजा बताए हावय हमर गुरू घांसीदास हो।
सतनाम सत्यरूप हिरदय मॅ बिराजे, अइसन बताए हावय बालकदास हो।

गुरू घांसीदास ने बताया कि मन की मलिनता को साफ करने से ही चेतना उत्पन्न होती है। सतनाम को समझने के लिए चेतना को जाग्रित करना अनिवार्य है।

धोई दीजै हो चुरोई दीजै हो, मोर मैलहे चुनरिया धोई दीजै हो।
काहे के चुनरी काहे के साबुन, काहे के पथरा में धोई दीजै हो।।
ये तन के चुनरी शबद के साबुन, ज्ञान के पथरा में धोई दीजै हो।
चेला भइगे चुनरी गुरू भइगे साबुन, सतनाम के पथरा मॅ धोई दीजै हो।।
धोई धोई कपड़ा गगन पर मेलिया, सतनाम के पन्थ चलाई दीजै हो।
कहे घांसीदास उजराई के हंसा, सतगुरू सतलोक पठाई दीजै हो।।

इस तरह गुरू घांसीदास और गुरू बालकदास ने समाज को व्यवहारिक सत्य की ओर ले जाने का प्रयास किया। उनकी वाणी और कार्य दोनों एकरूपता को दर्शाते है। वे समाज को रूढ़िवाद और अन्धविश्वास से कोसों दूर ले जाना चाहते थे। सतनाम- आन्दोलन अपने आप में एक महान क्रान्ति पथ दृष्टिगोचर होता है। लेकिन यह सोचने और समझने का विषय है कि क्या हम उनके बताये मार्ग पर चल पा रहे है। यह विवेकशील लोगों के लिए समझना जरूरी है। आइये हम सतनाम- आन्दोलन के वर्तमान स्वरूप पर गम्भीरता से अध्ययन एवं अवलोकन करें ताकि भविष्य का रास्ता निकल सकें।

सतनाम आन्दोलन का वर्तमान स्वरूप ः

पहला सन्देश मूर्ति पूजा का विरोध ः

आज प्रायः अच्छे पढ़े लिखे सतनामी घरों में गुरू घांसीदास की मूर्ति या तस्वीर अवश्य मिल जायेगी। इस तस्वीर के साथ साथ प्रायःअनेकों हिन्दु देवी देवताओं की भी तस्वीर मिलेगी। गणपति, दुर्गा, सन्तोषी, राम- सीता, राधा -कृष्ण आदि की तस्वीरे या मूर्तिया गुरू घांसीदास के आस पास लगी हुई मिल जायेगी। बल्कि गुरू बालकदास की तस्वीर शायद ही किसी घर में मिले। इस तरह हिन्दु परिवारों के आस- पास रहने बसने के कारण उनकी रूढ़िवादी संस्कृति की छाप सतनामियों पर पड़ती हुई स्पष्ट नजर आयेगी।

गुरू घांसीदास समाज को अन्धश्रद्धा से हटाना चाहते थे। लेकिन हम दिन- प्रतिदिन अन्धभक्त होते जा रहे है। गुरू की वाणी उनके अपने अनुयायियों के बीच ही उल्टी असर होते नजर आ रही है। अब मूर्ति पूजा का असर देखिए - जब आप अपने गुरू की पूजा अर्चना करेंगे और पास में दूसरी तस्वीर लगी होगी, तो स्वाभाविक उसके प्रति भी आपको श्रद्धा भाव उत्पन्न होगी। ऐसी स्थिति में आप मूर्ति पूजा का विरोध नहीं कर सकेंगे। कोमल मन के किसी न किसी कोने में भय छिपा रहेगा और संकट की घड़ी में खुल जायेगा। उन सभी दवी देवताओं पर कुछ न कुछ आस्था अवश्य बनने लगेगी। भले ही आपके काम का अच्छा परिणाम आपके अपने मेहनत के कारण हो लेकिन फलदाता आपको कोई दूसरा नजर आयेगा।

गिरौदपुरी मेला ः

हाल ही में **9 मार्च 2003** को गिरौदपुरी मेले में जाने का मौका मिला। वहॉ देखा कि लोग हजारों की संख्या में नारियल, अगरबत्ती लिए लाइन में खड़े मिले। इसे देखकर आश्चर्य का ठिकाना नही रहा। जगह जगह गुरू के सन्देश बजुर्ग लोगों के मुख से सुनने को मिलता है और उपर उनके सन्देश बता आये है जिसके अनुसार "ईश्वर के नाम पर पान, परसाद, नरियर, सुपारी चढ़ावन हर ढोंग आय।" ळेकिन ! आज हम कर क्या रहे है और हो क्या रहा है ? यही नहीं हजारों की संख्या में लोग जमीन नापते सड़को पर देखने को मिले। इसे देखकर समाज की मानसिक स्तर अत्यंत भयावह लगा। यह निश्चय ही पास के शिवरीनारायण मेले की नकल का परिणाम लगता है। यह समझ्ने का विषय है कि 'दुख को और बढ़ाने से दुख का इलाज कभी नहीं हो सकता बल्कि दुख ज्यादा ही बढ़ता है। शरीर को कष्ट देने से कष्ट कम नहीं होगा। कष्ट का इलाज यदि है तो उस पर मरहम पट्टी करने कम होता है।' क्या भूइया नापने से किसी बांझ महिला को बच्चा पैदा हो सकता है या बीमार आदमी का बीमारी दूर हो सकता है। कभी संभव नहीं हो सकता। बांझ- औरत हो या बीमार- आदमी, उनकी समस्या का समाधान डाक्टरी इलाज से संभव हो सकता है। सही इलाज से बांझ भी मॉ बन सकती है, बिमार आदमी ठीक हो सकता है।

मेला स्थळ में सुन्दर सा स्टेज देखने को मिला, लेकिन वहॉ से कोई ज्ञान की बातें शायद ही सुनने को मिली। बल्कि मन्दिर निर्माण के नाम पर, दानकर्ताओं के नाम का बार बार उच्चारण करते

सुना गया। गुरू ने कहा है “मन्दिरवा मा का करे जावो अपन घट ही के देव ला मनावो” हम कौन सा मन्दिर बनाने जा रहे है? गुरू ने किस मन्दिर में जाने से मना किया है? यदि गुरू ने सचमुच मन्दिर जाने से मना किया है तो आज उनके नाम पर एक और मन्दिर निर्माण कर गुरू के कौन से आदेश का पालन हो रहा है, यह सोचना होगा। गुरू घांसीदास जी की इच्छा थी, कि यदि कुछ निर्माण करना जरूरी है तो ‘आश्रय गृह या धरमशाला बनाओ’, जिसका रोज मर्रा के कार्य में उपयोग हो सके। कितना महान सोच था उनका। अतः यदि बनाना जरूरी हो तो सतनाम गुरूद्वारा क्यों न बनाया जाय, जिसका उपयोग पन्थ संचालन एवं ज्ञान वर्धन के साथ जन मानस का आश्रय गृह भी हो, जिससे उनका सन्देश चिरकाल तक सत्य बना रहेगा।

जब छाता पहाड़ पर पहुँचा तो देखा कि लोग हाथ में नारियल, अगरबत्ती लिए पत्थर की चट्टान के चारों ओर परिक्रमा कर रहे हैं। चट्टान का फेरा लगा रहे हैं। वहाॅ नारियल के छिलके का अम्बार लगा हुआ था। गुरू ने कहा है “पथरा के देवता हालय नइ तो डोलय ओमा का नारियल धूप अगरबत्ती चढ़ाइबो।” फिर हम लोग उनके इस आदेश के विपरीत पत्थर के चक्कर लगाकर क्या कर रहे है? कौन सा ज्ञान ढूढ़ रहे हैं ? ऐसा करने को हमे कौन प्रेरित करता है ? गुरू ने जहाॅ से ज्ञान अर्जन कर समाज को अज्ञानता एवं अन्धविश्वास को दूर करने का प्रयास किया। वहीं उनके ही कर्म भूमि में आज अज्ञानता की पूजा हो रही है। आज समाज किस तरह अन्धविश्वास के गर्त में गिरा हुआ है। काश् ! आज गुरू जिन्दा होते तो शायद यह दृश्य देखकर उनका दिल दहल जाता। अब प्रश्न उठता है कि क्या हम गुरू को जानते है ? यदि हाॅ जानते है तो क्या हम उन्हें सचमुच मानते है ? उनके आदेश एवं सन्देश के विपरीत काम करके हम किस तरह का श्रद्धा पेश कर रहे है सोचना होगा।

गुरू घांसीदास न तो कोई चमत्कारी पुरूष थे और न ही उनका किसी चमत्कार में विश्वास था। वे शुद्ध व्यवहारिक एवं उत्तम पुरूष थे। वे जानते थे कि “चकमक की चकाचौंध में ‘चंचल मन’ चकित हो, चमत्कार की कल्पना करने लगता है। ज्योंही चकमक की चमक गायब होती है, वास्तविक दुनिया में लौट कर भी, यह ‘चंचल मन’ पुनः उस चमत्कार की तलाश में भटकते हुए काल्पनिक जगत में खो जाता है।” इसीलिए उन्होंने काल्पनिक जगत से हट कर, सतनाम चेतना के सहारे चंचल मन को नियंत्रित कर मानवीय जीवन के अनुकुल बनाने का रास्ता प्रशस्थ किया। लेकिन आज पुनः अज्ञानता और अन्धविश्वास का शिकार हो लोग किसी चमत्कार की आशा में नारियल, अगरबत्ती लिए पत्थरों के पीछे भागते, उसकी चक्कर काटते नजर आते है। निश्चय ही यह देखकर पुरोहितवाद पुनः विजयी होता नजर आता है।

सिखों के महान आठवें गुरू तेगबहादुर को जब औरंगजेब ने कई धार्मिक नेताओं को भेज कर दबाव डाला कि ‘यदि वे सच्चे गुरू है तो वे कोई करिश्मा या चमत्कार दिखाये या फिर इस्लाम को तौहीन करें।’ इसपर गुरू तेगबहादुर ने जवाब दिया कि ‘कोई करिश्मा या चमत्कार दिखाना ईश्वर के कार्य या उसके नियम का अवहेलना है। उस पर बाधा पहुँचाना है जो पवित्र कार्य नहीं है । उन्होंने आगे कहा जहाॅ तक इस्लाम को कबूल करने की बात है तो इस्लाम भी उनके सिक्ख धर्म की तरह अच्छा और पवित्र है इसलिए धर्म परिवर्तन करने की आवश्यकता नहीं है।’ चमत्कार प्राकृतिक नियमों

के विरूद्ध है और जो लोग ऐसे किसी चमत्कार की आशा रखते है वे जिन्दगी भर भटकनों में पड़े रहेंगे। गुरू तेगबहादुर ने चमत्कारिक दुनिया से हट कर, 'शीश झुकाने के बदले शीश कटाना' उचित समझा। आज ऐसे महान वीर सपूतों के आगे सारा देश ही नही, दुनियॉ नतमस्तक है।

गुरू घांसीदास का जन्म दिन ः

अकसर जैसा देखने सुनने को मिलता है उसके अनुसार, अठारह दिसम्बर को गुरू का जन्म दिन लगभग इस तरह मनाया जाता है। दिसम्बर माह आते ही समाज में चन्दा उगाही का कार्य शुरू हो जाता है। गांव गांव में पन्थी पार्टी बुकिंग कराने की होड़ सी लग जाती है। सभी बड़े राजनीतिक दल अपनी राजनीतक रोटी सेंकने के लिए बरसाती मेंढक की तरह सकिय हो जाते है। अपने अपने नेताओं के भाषण व स्टेज बनाने के लिए अच्छी खासी मोटी रकम लोगों को मुहैय्या करायी जाती है। कुछ लोग गुरू घांसीदास के नाम पर मेला भी लगाते हैं। यह एक अच्छा अवसर होता है जब तारीफों के पुल बांधे जाते है। लोग समाज को बड़े- बड़े वायदे करते देखे जाते हैं। दिन भर लोग पन्थी गीत झूम- झूम कर नाच -नाच कर जयन्ती मनाते हैं। शाम को जय स्तम्भ में सफेद ध्वजा चढ़ाया जाता है। जय स्तम्भ में महिलाओं द्वारा आरती के साथ, सात हाथों का निशान लगाते देखा गया। शायद "सातनामी" के प्रतीक के रूप में सात हाथ का निशान दिया जाता हो। इन सबके बावजूद कहीं भी यह चर्चा होते नहीं देखा गया कि उनके कौन -कौन से मुख्य सात सन्देश थे। षह कोई नहीं बताता कि उन सन्देशों का पालन कैसे करना है। समाज मजबूत होने के बजाय मजबूर होते जा रहे हैं। जन मानस के स्थिति यथावत दयनीय है। यह परिवर्तन जरूर देखने को मिलता है कि सतनामी मजबूर हो बड़े पैमाने में छत्तीसगढ़ से बाहर पलायन कर गये।

मुंगेली के आस पास किसी गांव में जय स्तम्भ का प्राण- पतिष्ठा कराने की बात भी प्रकाश में आयी है। क्या प्राण- प्रतिष्ठा करने से जयस्तम्भ जीवित हो उठेगा ? लगता है गुरू घांसीदास के मूल मंत्र के बदले, पुनः पुरोहितों के मन्त्र ज्यादा प्रभावी हो गये। हो सकता है कि समाज का सतनाम से विश्वास उठ गया हो ? यह जानना जरूरी है कि प्राण-प्रतिष्ठा होती क्या है और कैसे किया जाता है ? मूर्ति बनाने का काम चाहे दुर्गा हो या गणेश अथवा कोई अन्य देवी देवताओं की मूर्ति हो, अकसर चित्रकार, शिल्पी या कुम्हार लोग बनाते हैं। कुम्हार के घर में वही मूरत रंगा- रंगाया, सजा- सजाया हो, उसे देवता नहीं माना जाता। उसी मूर्ति को जब पुरोहित लाकर मन्दिर में या किसी पण्डाल में स्थापना करके मन्त्र द्वारा उस मूरत में प्राण डालता है। इस मन्त्र फूंकने की प्रकिया को प्राण- प्रतीष्ठा कहते है। ऐसा हिन्दुओं में विश्वास है कि पुरोहित द्वारा मूर्ति में मन्त्र फूंकने से उसमें जान आ जाती है। यदि यह सत्य है तो प्राण प्रतीष्ठा करने वाला व्यक्ति अपने मृत पिता को जीवित क्यों नहीं कर लेता। आज तक यह किसी ने नहीं देखा कि जिस मूरत का प्राण-प्रतीष्ठा किया गया, वह मूरत कभी जीवित हो पाया है। उस मूर्ति ने कभी जीवित प्राणी की तरह चलना- फिरना, उठना- बैठना, खाना- पीना, आदि दैनिक कार्य किया हो ऐसा नही सुना गया। हॉ कुछ साल पहले आर.एस.एस. ने एक कमाल जरूर किया। यह कि गणेश जी के मूर्ति को केवल चतुर्थी को एक दिन पूरे देश में दूध पिला दिया। उसी शाम को देश के तमाम वैज्ञानिकों ने इसे झूठा करार दिया। धन्य हो रूढ़िवादी मानसिकता को जिसने इस बात को स्वीकार भी कर लिया कि गणेश जी की मूरत जिन्दा हो गई। लेकिन उन मूर्तियों

को वही लोग, दस बारह दिन बाद ही समुद्र या नदियों के हवाले कर आये। इतना दूध पीने के बावजूद बेचारे गणेश जी तब से अब तक पेशाब नहीं किये है।

शायद जय- स्तम्भ के प्राण -प्रतीष्ठा के पीछे लोाों की यही मन्शा रही हो। जय- स्तम्भ को जीवित करने का प्रयास कर रहे हो। यदि ऐसा रहा तो कल जय -स्तम्भ की पूजा अवश्य होगी और लोग तरह तरह की मन्नते मागेंगे। फिर गुरू घांसीदास और बालकदास के सन्देश ः पत्थर का देवता जो हिलता- डुलता नहीं, गुरू की वाणी की प्रमाणिकता कैसे सिद्ध होगी ? ऐसी स्थिति में सतनाम- आन्दोलन का स्वरूप कैसा होगा ? अतःआने वाले भविष्य को यदि उज्वल बनाना है तो समाज के तमाम बुद्धिजीवि वर्ग एवं विवेकशील लोगों को इस गम्भीर विषय पर कल अवश्य सोचना होगा।

प्रोफेसर डा. एस आर बन्जारे ने बताया कि पन्थी गीतों में 'अपन घट ही के देव' अर्थात सतपुरूष की पूजा जिसका मतलब आत्मचेतना की बात की गई है। इसमें कोई वाह्य पूजा पद्धति की बात कही नहीं की गई है। लेकिन जान पड़ता है वर्तमान में सतनाम -आन्दोलन से जुड़े सतनामी समाज गुरू घांसीदास के इस उपदेश से भटक गया है। धीरे धीरे उसकी पहचान रूढ़िवादी मूर्ति पूजक की होती जा रही है। सतनामी समाज की रीति- नीति और धार्मिक क्रिया- कलापों को देखकर ऐसा लगता है कि वह मूर्तिपूजकों के विधि विधानों व कर्मकाण्डों की ओर तेजी से बढ़ता नजर आता है। दोष चाहे किसी का हो, पर यह समाज सुधारकों एवं बुद्धिजीवियों के लिए गम्भीर चिन्ता का विषय बनता जा रहा है। जैतखाम की पूजा मूर्तियों की तरह की जाने लगी है।

इस तरह जैतखाम की आरती, कलश स्थापना, दीया- बाती जलाना, अगरबत्ती धूपबत्ती जलाना, भूईया नापना, मन्दिरों की तरह जैतखाम की परिक्रमा करना एवं उस पर हाथा देना, जयंती एवं मेला के अवसर पर भूईया नापना, गुरू के आदेश पर चलने के बजाय भगवान की तरह गुरू घांसीदास जी की मूर्ति पूजा करना, छाता पहाड़ का परिक्रमा करना, तथा सतनामी पण्डे पुरोहितों द्वारा कथा बॉचना, दान- दक्षिणा लेना, समाधि लगाना, कॉटे का बिस्तर बिछाकर उस पर लेटना, मनोकामना पूर्ति हेतु व्रत- उपवास करना, सत्यनारायण व्रत कथा के तर्ज पर घांसीदास महिमा तैयार कर गुरू को महिमा मंडित करना आदि अनेक कर्मकाण्डों में समाज लिप्त नजर आता है। दिन प्रतिदिन समाज वैदिक प्रथाओं में लिप्त होता जा रहा है। परंपरागत शोषकों की नकल में, शाषितों को सफल होना मुश्किल होगा। लोग एक तरफ सतनाम की बात करते है, वहीं दूसरी ओर अन्धविश्वास और रूढ़िवाद को पालते हुए सवर्ण मन्दिरों में पूजा करने को लालाइत भी रहते है। इससे शोषक वर्ग का हित यथावत बना रहेगा। जिस व्यवस्था के कारण यह समाज हजारों साल तक गुलाम रहा है उसी व्यवस्था के सहारे चलते हुए आजादी की कल्पना करना असंभव है।

पलायन एक गम्भीर समस्या है ः

यह भी ज्ञात हुआ है कि अम्बिकापुर, रायगढ़ और बिलासपुर जिला के कुछ इलाकों मे सतनाम आन्दोलन से जुड़े लोग ईसाई एवं इस्लाम धर्म की ओर झुकते नजर आ रहे है। जिसका कारण कुछ भी हो सतनाम आन्दोलन पर अवश्य प्रभाव पड़ेगा। यहॉ खाई से निकल कर वहॉ कुऑ में गिरने वाली

कहावत चरितार्थ होती है। प्रायः हर साल गरीबी और बेरोजगारी से त्रस्त यहॉ की जनता बाहर के राज्यों में खासकर दिल्ली, पंजाब, हरियाणा और जम्मू -काश्मिर की ओर बड़े पैमाने में पलायन कर जाती है। समस्या का स्थायी हल ढूढ़ने के बजाय सत्ता में बैठे लोग इसे आदतन बताकर अपना पल्ला झाड़ लेते है। भला कौन आदमी अपना घर बार छोड़ कर शहरों की गन्दी नालियों के किनारे रहने को मजबूर होगा जहॉ उसकी इज्जत आबरू की कोई खैर नहीं । ठेकेदार तो जानवरों की तरह काम लेते हैं साथ ही महिलाओं के साथ शोषण अलग से होता है।

पलायन करना छत्तीसगढ़ियों का आदत है जो ऐसा सोचते है। वे अपने मॉ, बहन, बेटियों को उन मजबूर लोगों के साथ जो बाहर शहरों में मजदूरी करने जाते हैं भेज कर क्यों नहीं देख लेते। यह जानना चाहिए कि छत्तीसगढ़ में न्यूनतम मजदूरी भी नहीं मिलता। इसके लिए सत्ता में बैठे लोग या शासित वर्ग, कौन जिम्मेदार हैं ? छत्तीसगढ़ में केवल एक ही फसल होती है। सूखा- अनावृष्टि भी छत्तीसगढ़ की गम्भीर समस्या है। एक फसल वह भी आकाश पर निर्भर रहता है। सिंचाई व्यवस्था नगण्य है। इसके अलावा अधिकतर लोगों के पास खेती योग्य जमीन नहीं है। कुछ लोगों के पास थोड़ा बहुत है भी तो वह साल भर जीवनयापन के लिए परिपूर्ण नहीं है। कृषि पर निर्भर होने के कारण क्षेत्र की जनता साल के बाकी छै महीने खाली रहती है। लगातार अनावृष्टि व अकाल से त्रस्त हो काम की तलाश में उन्हें अपना घर बार छोडकर मजबूरी में बाहर जाना पड़ता है। समस्या की तह में जाने के बजाय इसे आदतन कहना सरासर बेइमानी लगता है।

कुटीर उद्योग के प्रति सत्तासीन लोग उदासीन हैं। उनका नजर केवल उन्हीं शोषणकर्ता उद्योगपतियों पर टिका हुआ है। सरकारी उद्यमों को छोड़कर जो उद्योग लगे भी हैं उनमें अधिकतर बाहरी क्षेत्र के लोग कार्यरत हैं। वहॉ क्षेत्रीय लोगों की संख्या नगण्य है। कुटीर उद्योग के अभाव व ट्रेड एवं कामर्स का नियंत्रण ऐसे लोगों के हाथ में है जो क्षेत्र की जनता को कमजोर व गुलाम बनाए रखना चाहती है।

बेरोजगारी की मार से तंग व खाली पेट घर में बैठ कर, शेष छै माह बीता पाना दूभर हो जाता है। भूख की दुख मिटाने, मजबूरी से मजदूरी करने लोग शहरों में चले जाते है। शहरों में उन्हें मई - जून की कड़कती धूप अथवा बरसात में सहारा के नाम पर, या तो खुला आसमान या फिर गन्दे नाला का किनारा ही मिलता है। छत्तीसगढ़ के मुठ्ठी भर सवर्णो को छोड़कर पलायन प्रायः सभी समुदाय के लोग करते हैं। ये शोषण के किस्से किसे सुनायें।

इस तरह देखा जाय तो क्षेत्र की तमाम दलित, शोषित एवं पीड़ित जनता अशिक्षा एवं अज्ञानतावश अन्धविश्वास एवं रूढ़िवाद के चक्कर में बुरी तरह जकड़ा हुआ त्रस्त नजर आता है। गुरू घांसीदास ने अपने जीवनकाल में इस व्यवस्था का डटकर विरोध किया था। किन्तु आज समाज उन्ही रूढ़िवादी परंपराओं को आत्मसात करने में तुला है जिसके कारण ये दलित शोषित बने हुए हैं। उक्त किया- कलापों से गुरू घांसीदास के सतनाम- आन्दोलन का प्राण पखेरू अवश्य उड़ जायेगा। उनका आन्दोलन सैकड़ों साल पीछे चला जायेगा। जिसका खामियाजा आने वाली पीढ़ी को भुगतना पड़ेगा।

यदि समय रहते हुए समाज के बुद्धिजीवि वर्ग उनके आन्दोलन को पुनः पटरी पर लाने का प्रयास नहीं करते, तो आने वाला कल तथाकथित सवर्णो के चंगुल में पुनः जकड़ा मिलेगा। गुरू घांसीदास इसी शोषण के खिलाफ संघर्ष किये थे। आज भी 'सतनाम आन्दोलन' ही इन तमाम समस्याओं का एक मात्र विकल्प नजर आता है। जितनी जल्दी क्षेत्र की जनता इस 'सतनाम आन्दोलन' में सरीक होगी, उतनी जल्दी ही उनके समस्या का निदान होगा। आज समाज में कुछ लोग पुरोहितों की भॉति मुफ्तखोर होते जा रहे है। लोगों की मेहनत की कमाई मुफ्त में बैठे- बैठे खाना चाहते है। पढ़ा- लिखा वर्ग निष्क्रिय हो, केवल अपने पेट पालने व समस्याओं से कन्नी काटने में लगा हुआ है। इसका सीधा लाभ शोषकों को मिलेगा और नुकसान समाज का होगा।

महामानव बुद्ध का आन्दोलन को भी इसी तरह असरहीन बनाया गया। तथाकथित लोगों ने महामानव बुद्ध को भगवान बनाकर उसकी मूर्ति का पूजा कराना शुरू कर दिया। फलस्वरूप उनका महान क्रान्तिकारी आन्दोलन समय के साथ अपना मूल पथ खो बैठा। आज उनमें भी व्रत कथाओं की तरह त्रिपिटक पाठ पढ़ना शुरू हो गया। बुद्ध को दसवॉ अवतार घोषित कर अवतारवाद का झंडा भारत भूमि में गाड़ने में तथाकथित शोषक वर्ग सफल रहा है। सन्त कबीर का क्रान्तिकारी पथ को भक्तिमार्ग में ढकेल दिया। आज उनके अनुयायी चौका चन्दन में व्यस्त हो गये। आन्दोलन का स्वरूप ही बदल गया। गुरूनानक जी का सिख आन्दोलन कुछ हद तक सफल रहा है, लेकिन उन्हें भी हिन्दुओं रक्षक बनाकर अपने दायरे में लाने में कामयाब रहे। भले ही कोई सिख अपने को हिन्दू नहीं मानता हो।

गुरू घांसीदास का जाति- विहीन, सतनाम- आन्दोलन, आज एक जाति का स्वरूप ले लिया। इस आन्दोलन में भाग लेने वाले तमाम समुदाय के लोगों को सतनामी जाति के नाम से जाना जाता है। जिस तरह नागवंशियों को नाग सर्प के साथ जोड़ दिया, अब 'सतनामी को सातनामी' बनाने का प्रयास भी जोर शोर से चल रहा है। कल 'सत्य के बदले सात' के आंकड़ा लिए 'सतनामी भी सातनामी' कहलाने लगे तो कोई आश्चर्य नहीं होगा। आज सतनामी समुदाय भी उन्हीं रूढ़िवादी परम्पराओं को आत्मसत करने लगे हैं, जिनका गुरू ने डट कर विरोध किया था। गुरू घांसीदास जो स्वयं किसी चमत्कार का विरोध करते रहे, उन्हें चमत्कारी पुरूष घोषित करने की प्रयास जारी है। राजनीति के आड़ में सामाजिक- चेतना लगभग शून्य होती जा रही है। समाज दिन प्रति दिन बिखरता व कमजोर होते जा रहा है। अब देखना है कि यह आन्दोलन कौन सी करवट लेता है।